मनुष्यों में बुद्धिमान् है और सब प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त होने पर भी मुक्त ही है।।१८।।

तात्पर्य

कृष्णभावनाभावित कर्म करने वाला स्वभावतः सम्पूर्ण कर्मबन्धनों से मुक्त रहता है। उसके सम्पूर्ण कार्य श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए हैं। इसलिए वह किसी भी प्रकार का कर्मजन्य सुख-दुःख नहीं भोगता। श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए ही सब कर्म करने के कारण वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है। 'अकर्म', अर्थात् कर्मफल से रहित। निर्विशेषवादी इस भयवश सकाम-कर्म से निवृत्त हो जाता है कि कहीं कर्मफल से मुक्तिपथ में व्यवधान उपस्थित न हो जाय। भक्त को नित्य भगवत्-दास के रूप में अपन यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, इसलिए वह कृष्णभावनाभावित क्रियाओं में नित्य तत्पर रहता है। सभी कुछ श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए किया जाता है, इससे वह उस सेवा में केवल चिन्मय आनन्द ही आनन्द का अनुभव करता है। इस पद्धति में निष्ठ भक्त निजेन्द्रिय-तृप्ति की कामना से पूर्ण मुक्त हैं। 'मैं श्रीकृष्ण का नित्य दास हूँ', यह भाव सब कर्मफलों से मुक्त कर देता है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।१९।।

यस्य=जिसके; **सर्वे**=सब; **समारम्भाः**=उद्यम; **काम**=इन्द्रिय-तृप्ति की कामना के; **संकल्प**=निश्चय (से); **वर्जिताः**=रहित हैं; **ज्ञान**=पूर्ण ज्ञान की; **अग्नि**=अग्नि द्वारा; **दग्ध**=भस्म हुए; **कर्माणम्**=कर्म वाले; **तम्**=उस पुरुष को; **आहुः**=कहते हैं; **पण्डितम्**=विद्वान्; **बुधाः**=ज्ञानी।

अनुवाद

जिसके सब कर्म इन्द्रियतृप्ति की कामना से रहित हैं, उसको पूर्ण ज्ञानी समझा जाता है। उस पुरुष के कर्मफल ज्ञानरूप अग्नि में भस्म हो जाते हैं, ऐसा ऋषियों का कहना है।।१९।।

तात्पर्य

एक पूर्ण ज्ञानी ही कृष्णभावनाभावित पुरुष की क्रियाओं का समझ सकता है। कृष्णभावनाभावित पुरुष में इन्द्रियतृप्ति की प्रवृत्ति का अत्यन्त अभाव रहता है, इससे यह समझा जाता है कि भगवान् के नित्य दास के रूप में अपने स्वरूप को जानकर उसने सम्पूर्ण कर्मफल को भस्म कर दिया है। इस ज्ञानमयी कृतकृत्यता को प्राप्त मनुष्य ही यथार्थ में विद्वान् है। 'मैं भगवान् का नित्य दास हूँ', यह ज्ञान अग्नि की सी गरिमा रखता है। एकदा प्रदीप्त हुई यह ज्ञान रूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मबन्धन को अविलम्ब भस्म कर देती है।

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।।२०।।